Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
Vol. 3, No. 4, March - April 2026

पद्म क्षेत्र राजिम एवं संबंधित ग्रामों के नाम का ऐतिहसिक एवं पुरातात्विक विवेचन

डॉ संध्या शर्मा

सहायक प्राध्यापक (अतिथि), प्राचीन भारतीय इतिहास,
संस्कृति एवम् पुरातत्त्व अध्ययनशाला, पं रविशंकर शुक्ल वि वि रायपुर छत्तीसगढ़

वैष्णव, शैव और शाक्त धर्म, पैरी, सोंदूर और महानदी के संगम स्थल के तट पर बसा राजिम प्राचीन काल से ही दक्षिण कोसल का प्रमुख ऐतिहासिक धार्मिक और सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। नगर, ग्राम्य एवम् वन्य जीवन इस स्थान के आसपास झलकता है। यहाँ की प्राचीन संस्कृति भी मूलतः लोकजीवन की अनेक उपलब्धियां संचित करती हुई सी प्रतीत होती हैं।

राजिम के नामकरण के संबंध में अनेक मत-मतान्तर दिखाई पड़ते हैं। अधिकांश विद्वान राजिम को राजीव का विकृत रूप मानते हैं। इस संबंध में वे राजीवलोचन से भगवान विष्णु के विरूद का आशय स्वीकार करते हैं। ठाकुर विष्णु सिंह ने "राजिम" के नाम की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया है कि राजिम लोचन (देव) के नाम पर ही इस स्थान का नाम राजिम पड़ा है।'

राजिम लोचन मंदिर के महामन्डप की पार्श्व भित्ति पर कल्चुरि संवत् 896 (अर्थात् 1145ई. सं.) का एक शिलालेख हैं जिसे रतनपुर के कल्चुरि नरेशों के अधीनस्थ सामंत जगतपाल देव ने उत्कीर्ण कराया है।

इस अभिलेख में जगपाल देव के वंश का नाम 'राजमाल' उल्लिखित है। एलेक्जेंडर कनिंघम ने 'राजपाल' वंश नाम से ही 'राजम' या राजिम' की उत्पत्ति मानी है। जगपाल देव के अभिलेख में उनके द्वारा राजिम में बनवाये गये मंदिर तथा इसे राम को समर्पित करने का उल्लेख है। यह अभिलेखिक विवरण प्रमाणित करता है कि 12वीं शदी में वैष्णव संप्रदाय के अंतर्गत रामोपासना का यह महत्वपूर्ण केन्द्र था। कतिपय विद्वानों ने रामपुर की संभावना को संगतियुक्त माना है, और अपने तर्क में रामपुर नाम की संभावना को संगतियुक्त माना।

पद्म राजीव का पर्याय हैं राजिम माहात्यम नामक संस्कृत ग्रंथ में इसे पद्म क्षेत्र कहा गया है। एक अन्य लोक-विश्वास से पता चलता है कि सृष्टि के प्रारंभ में भगवान् विष्णु के नाभिकमल की पंखुड़ी (केसर कण भी) पृथ्वी पर गिर पड़ी। यह क्षेत्र इसीलिये पद्मक्षेत्र के नाम से विख्यात हुआ। स्कंद पुराण में उल्लिखित विवरण से विदित होता है कि जगन्नाथ पुरी पुरूषोत्तम क्षेत्र में स्थित है (अन्य पुराणों में भी उल्लेख मिलता है) पुरुषोत्तम क्षेत्र का विस्तार महानदी और स्वर्णरेखा नदी के मध्यवर्ती भू-भाग तक था तथा ऋषिकुल्या नदी इसकी दक्षिणी सीमा थी। 3

'ऋषिकुल्या समासाध्य दक्षिणोंदधिगामिनिम् ।
स्वर्णरेखा मानद्योर्मध्ये देशः प्रतिष्ठितः ।

शब्दकल्पद्रुम में महानदी को क्षेत्र के अंतर्गत बताया गया है। (शब्दकल्पद्रुम, तृतीय भाग पृ 660) इस कमलदल द्वारा आच्छादित भू-भाग कालांतर में पद्मक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कुलेश्वर (उत्पलेश्वर लिंग-राजिम) को केन्द्र मानकर चंपेश्वर (चम्पारण), बावनेश्वर (बम्हनी), फिंगेश्वर (फिंगेश्वर), कोपेश्वर (कोपरा) तथा पटेश्वर (पटेवा)। इन पाँच शिवलिंगों द्वारा आवृत भूमिखण्ड पर्यन्त

इसका विस्तार स्वीकार किया जाता है। छत्तीसगढ़ अंचल में इस पद्मक्षेत्र की प्रदक्षिणा का विशेष धार्मिक महत्व है। इसे राजिम की पंचकोशी यात्रा के नाम से संबोधित किया जाता है।

जनश्रुति से ज्ञात होत है कि राजिम नामक एक तेलिन के नाम पर इस स्थान का नाम पड़ा है। कहा जाता है। कि वह तेल बेचकर लौट रही थी तो राह में पड़े प्रस्तर खंड से वह ठोकर खाकर गिरी और सारा तेल लुढ़क गया। वह जमीन पर लुढ़के तेलपात्र को उसी प्रस्तर पर रखकर ससुराल में इस घटना के फलस्वरूप प्रताड़ित होने के डर से रोने लगी। बाद में घर लौटते समय देखती है कि तेल पात्र भरा हुआ था। अब वह नित्य तेल बेचकर आती और पात्र वहीं रखकर बैठ जाती फिर भी वह तेल पात्र भरा ही रहता था, तनिक भी नहीं रीतता था।

पति व सास द्वारा चरित्र पर शंका किये जाने पर उसने वह प्रस्तर खण्ड दिखाया। उन लोगों ने अक्षय फलदाता प्रस्तरखंड को उठाकर घर ले जाने का निश्चय किया। निर्णयानुसार जब दूसरे दिन प्रस्तरखंड को जमीन से बाहर निकाला तो साधारण शिलाखंड के स्थान पर चतुर्भुजी भगवान विष्णु का श्यामवर्णी श्री विग्रह पाकर प्रसन्न हुये और घर पर श्रद्धापूर्वक पूजन करने लगे।

दूसरी ओर इसी समय राजा जगतपाल का स्वप्नादेश हुआ कि वह लोकल्याण हेतु मंदिर का निर्माण कराये और प्रतिमा को स्थापित करे। राजा ने मंदिर तो बनवा लिया पर सिद्ध मूर्ति प्राप्त नहीं हुई। लोगों ने राजिम तेलिन वाली घटना को सुनकर राजा ने राजिम तेलिन से मूर्ति की याचना की और बदले में मुँहमांगा धन देने का वचन किया। मूर्ति के बराबर के वजन का स्वर्ण देना स्वीकार किया गया। तुला पर मूर्ति और स्वर्ण को तौलने पर मूर्ति का भार तृणमात्र भी ना रहा। अंत में राजिम तेलिन के परिवार ने प्रलोभन त्याग दिया और राजिम ने राजा से वचन लिया कि भगवान के नाम के आगे उनका नाम चलेगा और श्री विग्रह को स्थापित करने हेतु दे दिया। उसी दिन से भगवान राजिम लोचन (राजीव लोचन) के नाम से पुकारे जाने लगे और उनका पवित्र धाम राजिम कहलाने लगा।

इतिहासकारों ने इसे पूर्णतः सत्य नहीं माना है। परन्तु इसमें सत्यांश की संभावना अवश्य स्वीकार की है। इसके दो तथ्य प्रमाण के रूप में ही मंदिर प्रांगण में मौजूद हैं। डॉ. विष्णुसिंह ठाकुर ने तथा प्रो. लक्ष्मीशंकर निगम ने राजिम की ऐतिहासिकता को प्रमाणित किया है।

राजा जगतपाल की ऐतिहासिक पुरूष माना जा सकता है और उसकी समता जगपाल देव नामक उस राजा से स्थापित की जा सकती है, जिसका शिलालेख राजीवलोचन मंदिर के महामण्डप की पार्श्वभित्ति पर जड़ा हुआ है। राजीवलोचन मंदिर के सामने (राजेश्वर व

दानेश्वर शिवमंदिरों के पीछे) जो तेलिन मंदिर के नाम से प्रसिद्ध देवगृह हैं। वह राजिम तेलिन संबंधी अनुश्रुति की ऐतिहासिकता को संभावित सिद्ध करता है।

इस मंदिर के गर्भगृह में पूजन हेतु रखे गये शिलापट्ट ऊँची वेदी पर पृष्ठ भित्ति से सटाकर रखा हुआ है। इसके सम्मुख पटल के ऊपरी भाग पर खुला हथेली, सूर्य, चंद्रमा व पूर्ण घट की आकृतियाँ रूपायित हैं। नीचे एक पुरुष और स्त्री की सम्मुखाभिमुख पद्मासन में बैठी एवं हाथ जोडे प्रार्थना की मुद्रा में प्रतिमायें उत्खचित हैं। इनके दोनों पार्श्वों में क्रमशः एक-एक परिचारिका की मूर्ति है। शिलापट्ट के मध्य भाग में जुए में जुते बैलयुक्त कोल्हू का रूपांकन

रायबहादुर हीरालाल ने जुते बैल से युक्त कोल्हू को राजिम तेलिन की वंश परंपरा से चले आने वाले व्यवसाय की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति बताया है। यह शिलापट्ट सती-स्तंभ है। इसे आधार मानकर रायबहादुर हीरालाल ने यह मत अभिव्यक्त किया है कि यदि उपरोक्त अनुश्रुति के मूल में सत्यॉश है तो यह स्वीकार करना पड़ेगगा कि राजिम अपने आराध्य भगवान राजीव लोचन के सामने सती हुई थी। उपर्युक्त सती स्तंभ मे स्थूल दृष्टि का चित्रण कोल्हू एवं बैल को प्रतीक मानकर किया गया जान पड़ता है तथा धर्माचरण से ही मोक्षपद प्राप्त हो सकता है। राजिम का जीवन भी ऐसा ही था जो अंत में समस्त

सांसारिक दुःखों के कारण को त्याग (लोभ, मोह, अहंकार आदि) अपने ईश के प्रति समर्पित हो गयी और देव के संग उसका नाम जुड गया।

सूक्ष्म दृष्टि से इस प्रतीकांकन का अध्ययन करते हैं तो इसमें अत्यंत गहन भावों एवम् दार्शनिक तथ्यों को अभिव्यक्त पाते हैं। भारतीय प्रतीक विज्ञान में वृष (बैल) का संबंध धर्म से स्थापित किया गया है। पुराणों में धर्म को वृष के रुप में उल्लेख किया गया है। स्कंद पुराण में विष्णु का वृषभ उवतार का वर्णन है। योग वशिष्ठ में ऊखल को काली की आकृति कहा गया है। (उत्तरार्ध सर्ग 84, श्लोक सं.37) काली शिव शक्ति है। कोल्हू का अधोभाग उखल का ही भिन्न रूप है। शक्तितत्व के अनुरूप शिवतत्व की भी स्थाणु रूप में कल्पना की गयी है।" इस तरह संपूर्ण कोल्हू लिंगस्वरूप और वेदी का एक स्वरूप होने अर्धनारीश्वर का प्रतीक है।

पुरूषोत्तम तत्व के अनुसार महानदी का नाम चित्रोत्पला है। इस ग्रंथ में चित्रोत्पला का उद्गम विध्यपाद से बताया गया है, तथा इसे समस्त पापों का हरण करने वाली व परमपुण्य प्रदोयिनी कहा गया है।

वायुपुराण में चित्रोत्पला के स्थान पर नीलात्पला पाठान्तर मिलता है।"

समस्त पौराणिक साक्ष्यों के परीक्षणोपरांत यह निष्कर्ष निकाला है कि महानदी का चित्रोत्पला नाम उसके पैरी नदी के संगम के बाद से प्रारंभ होता है।" चित्रोत्पला में दो शब्द का युग्म हैः प्रथम उत्पल एवं द्वितीय चित्रा। उत्पल का शाब्दिक अर्थ नीलकमल। चित्रा-गायत्री स्वरूपा महाशिक्त का एक नाम है, वह परम ऐश्वर्य महालक्ष्मी है। इस तरह पैरी के संगम के बाद महानदी का चित्रात्पला नाम व महाभारत के स्वप्नकाल के समय से राजिम एक वैष्णव पीठ है

यह सिद्ध होता है। इस तथ्य की पुष्टि राजिम कुलेश्वर मंदिर अभिलेख से भी हो जाती है। कुलेश्वर मंदिर के महामंडप में 9वीं शताब्दी का एक अभिलेख है, जिसकी पाँचवी पंक्ति में पैरी और महानदी के संगम स्थल को श्री संगम कहा गया है। श्री लक्ष्मी का नाम जो कि विष्णुशक्ति हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान राजिम को पद्म क्षेत्र (कमल क्षेत्र) कहना, यहाँ के प्रमुख देवता का राजीव लोचन (नीलकमल दल के समान नेत्र वाले अर्थात् श्री विष्णु) नामाभिधान तथा राजिम के धार्मिक महत्व का जगन्नाथपुरी से संबंध स्थापित किया जाना आदि ऐसे तथ्य है, जिन्हें परम्पराओं द्वारा पोषित ऐतिहासिक सत्य के रूप में सहजभावेन स्वीकार किया जा सकता है। महाभारत तथा पुराणों में महानदी की सहायक तेल नदी को उत्पला, उत्पलावती कहा गया है। इसे आधार को मानकर अमरनाथ दास तथा कुछ अन्य विद्वानों ने यह मत व्यक्त किया है कि तेल नदी से संगम के कारण ही महानदी का नाम चित्रोत्पला पड़ा।" महाभारत के भीष्मपर्व में उल्लिखित है जिसमें उत्पलेश तथा चित्रामाहेश्वरी से चित्रोत्पला नाम की उत्पत्ति बताई गयी है।"

महाशिवगुप्त ययाति का मरैमुजरा ताम्रपत्र तथा सोमेश्वर देव का महदा ताम्रपत्र में "तेला" तथा चित्रोत्पला का उल्लेख किया गया है। अतः राजिम में उत्पलेश शिव एवं चित्रा माहेश्वरी के युगल विग्रह का प्रतिष्ठित होना असंभावित नहीं कहा जा सकता।

पैरी से उसके पवित्र संगम का श्री संगम नामाभिधान वैष्णव प्रभाव की देन जान पड़ता है तथा इस भूमि में आकर हरिहर शिव भी उत्पलेश कहलाने लगते हैं। राजिम के कुलेश्वर महादेव का वास्तविक नाम उत्पलेश्वर है जो उनके हरिहर रूप की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। यहाँ शिव की शक्ति चित्रा माहेश्वरी उत्पलाक्षी रूप में प्रकट होती है। समस्त लक्षणों से युक्त चतुर्भुज विष्णु का श्री विग्रह राजिम लोचन (राजीवलोचन) कहलाने लगता है (ब्रह्मपुराण में उल्लिखित है कि पुरुषोत्तम क्षेत्र में शैव और वैष्णवों के भेद समाप्त होकर समन्वित हो जाते है। रायपुर से प्राप्त शिलालेख में राजिम के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस लेख में तिथि उत्कीर्ण नहीं है, परन्तु लिपि के आधार पर बालचंद जैन ने इसे 14वीं-15वीं शताब्दी का माना है। इस अभिलेख में महाराज द्वारा राजीवनयन में एक जगन्नाथ मंदिर और एक सुदृढ

शंभू मंदिर के निर्माण कराने का उल्लेख है। राजीवनयन स्थान नाम की समता निःसंदेह वर्तमान राजिम से की जा सकती है। इतिहासकारों ने कहा है कि इस प्राप्ति के आधार 14वीं-15वीं शताब्दी का माना है।

महाशिवतीवर देव का ताम्रपत्र 1785 में राजिम के तत्कालीन मालगुजार हनुमत राव महाडिक को राजीवलोचन मंदिर की समीपवर्ती भूमि पर खुदाई करते हुए प्राप्त हुआ यह अभिलेख मंदिर के भंडार में संग्रहीत है। एलेक्जेंडर कनिंघम ने विल्सन महोदय के पश्चात् इसका पुनः प्रकाशन आर्कियोलॉजी सर्वे रिपोर्ट आफ इंडिया में किया। (कालांतर में फ्लीट ने 'कार्यस इसिक्रिप्सन इंडिकेरम् जिल्द तीन के गुप्तकालीन लेख) अठारहवीं पंक्ति में राजा को परमवैष्णव

कहा गया है। इसके बाद की पंक्तियों में तीवर देव द्वारा ज्येष्ठ मास की द्वादशी के दिन भारद्वाज गोत्रीय और वाजसनेय माध्यनंदिन शाखा के ब्राह्मण गौरीदत्त के दो पुत्रों भवदत्त और हरदत्त को अपने वंश के पुण्य वर्धन हेतु पेण्ठानभुक्ति में स्थित पिम्परीपद्रक नामक ग्राम का जलधारापूर्वक दान देने का उल्लेख है। पिम्परीपद्रक ग्राम की समता पिपरौद से तथा विष्णु सिंह ठाकुर जी ने इसकी पहचान वर्तमान पितईबंद से भी की है और पेण्ठानभुक्ति की समता पाण्डुका से की है।" जगतपालदेव का राजीवलोचन मंदिर शिलालेख के श्लोक 15,16 में उसके द्वारा कल्चुरि नरेश पृथ्वीदेव के समय में सरहागढ़ मेचकासिहावा कुसुमभोग, कांदाडोंगर, कान्तार विजय का उल्लेख है इसमें कुसुमभोग की समता कोसमर्रा, कांदाडोंगर बिन्द्रानवागढ़ तहसील में स्थित पहाड़ी भाग है।

राजा जगपाल द्वारा मंदिर के नैवेद्य के लिये दिये गये शाल्मलीय ग्राम की पहचान ग्राम रहना से की गयी है। राजिम के आसपास के टीले तथा पुरातात्विक अनुसंधान से अनेक ग्रामों की पहचान अपेक्षित है।

1. (डॉ. विष्णु सिंह ठाकुर, राजिम पृ. ४ म.प्र हिन्दी ग्रंथ अकादमी प्रकाशन)
2. (सी. आई. आई जिल्द 4 क्रम संख्या 88)
3. (स्कंदपुराण, वैष्णवखंड, पुरुषोत्तम क्षेत्र महात्म्य, अध्याय 6 श्लोक 27)
4. (पृ. 9 राजिम, डॉ. विष्णुसिंह ठाकुर)
5. (श्री विष्णु सिंह ठाकुर के पुस्तक से साभार एवम् स्थानीय पुजारी द्वारा बताये श्रुति पर आधारित)
6. (पृ. 7. राजिम, ठाकुर विष्णुसिंह, वही)
7. (रायपुर डिस्ट्रिक्ट गजेटियर सन् 1909, पृ.सं. 333)
8. (डॉ. विष्णुसिंह ठाकुर, पृ. 8 वहीं)
9. (टी.ए. गोपीनाथराव-एलिमेण्ट्स ऑफ हिन्दु आइकोनाग्राफी, जिल्द पृ. 2781)
10. (श्री मद्भागवत् पुराण, स्कंध 1. अध्याय 17. श्लोक संख्या 22 एवं 24)
11. (महाभारत, अनुशासन पर्व 151/10)
12. (लिंगवेदी समायोगादर्धनारीश्वरो भवेत्) (लिंगपुराण-99, 8)
13. नदी तत्र महापुण्या विध्यपाद विविर्गता। चित्रोत्पलोति विख्याता सर्वपापहरा शुभा ।। (महाभारत भीष्मपर्व 9/34, तथा मत्स्य पुराण 114/25, ब्रह्मपुराण 27/31/32)
14. (वायुपुराण 45/100)
15. (डॉ. सरकार, इण्डिगन हिस्ट. क्वार्ट भाग 27 खंड-3 वर्ष 1951 पृ.सं. 222)

16. (रायबहादुर हीरालाल डिस्क्रीष्टित लिस्ट ऑफ इन्स इन सी.पी एंड बरार (प्रथम संस्करण) क्रं सं. 136, पृ. 104)
17. (इंडिया एंड जंबू आइलैण्ड पृ. 118, कलिंग हिस्टोरिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट जर्नल भाग 3 पृ 235)
18. (भीष्म पर्व 9/35) उत्पलेशें समासाद्ध यावच्चित्रामहेश्वरी। चित्रोत्पलेति कथिता सर्वपापप्रणाशिनी ।।
19. (सोमेश्वर देव का महदा ताम्रपत्र एपी इंडिका भाग 28 नं. 45)
20. (शैव भागवतानामं च वादार्थ प्रतिषेधकम्, 56/60'65 डॉ पीवी काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास भाग-3, पृ 1382 की पाद-टिप्पणी 24 से उद्धृत)
21. (ठाकुर विष्णु सिंह, राजिम, पृ 38)
22. (वही, हीरालाल के अनुसार)